पुस्तक: संगीत - तबला एवं पखावज हमारे अवनद्ध वाद्य, कक्षा 12

अध्याय 1: ताल की अवधारणा तथा संगीत में इसका महत्व

1. ताल की परिभाषा एवं महत्व

- **परिभाषा:** संगीत में समय नापने के साधन को **ताल** कहते हैं।
- **महत्व:** भारतीय संगीत में ताल को "**संगीत का प्राण**" माना गया है। चाहे वह भारतीय शास्त्रीय संगीत हो, सुगम, लोक या फिल्मी संगीत—सभी में ताल की प्रधानता होती है। गायन, वादन (तंत्र वाद्य) और नृत्य, ये तीनों ही विधाएँ ताल की बुनियाद पर टिकी होती हैं।
- **पाश्चात्य संगीत से भिन्नता:** जहाँ पाश्चात्य संगीत में मुख्य रूप से केवल 'लय' (Rhythm) के विभिन्न प्रकारों का प्रयोग होता है, वहीं 'ताल' केवल भारतीय संगीत की अपनी एक अनोखी विशेषता है।
- **शास्त्रीय आधार:** पंडित शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' के श्लोक के अनुसार—प्रतिष्ठा अर्थ वाली **'तल्'** धातु में **'घञ्'** प्रत्यय लगाने पर 'ताल' शब्द बनता है। इसका अर्थ है कि गीत, वाद्य और नृत्य को व्यवस्थित करना या आधार प्रदान करना ही ताल है।

2. ताल का ऐतिहासिक विकास

- **सर्वप्रथम उल्लेख:** ताल का पहला लिखित उल्लेख भरत मुनि के **नाट्यशास्त्र** ग्रंथ में मिलता है। उन्होंने इसमें **5 मार्गी तालें** बताई हैं: चच्चत्पुट, चाचपुट, षट्पितापुत्रक, सम्पक्वेष्टाक और उद्घट्ट।
- **प्राचीन वादन शैली:** प्राचीन काल में ताल आज की तरह तबले या पखावज (अवनद्ध वाद्यों) पर नहीं बजाए जाते थे। तब मंजीरा जैसे 'घन वाद्यों' पर ताली-खाली देकर ताल का स्वरूप दिखाया जाता था और अवनद्ध वादक केवल गायन की आवश्यकतानुसार बोल बजाकर संगत करते थे।
- **देशी तालें:** नाट्यशास्त्र के बाद पंडित शारंगदेव ने अपने ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में 5 मार्गी तालों के साथ **120 देशी तालों** का भी वर्णन किया है।

3. ताल और छंद का संबंध

- संगीत में जो स्थान ताल का है, साहित्य/काव्य में वही स्थान छंद का है। दोनों का मुख्य उद्देश्य व्यतीत हो रहे समय (काल) को मापना है।
- **अंतर:** ताल समय को मात्राओं के माध्यम से नापता है, जबकि छंद समय को **लघु** (|) और **गुरु** (S) के माध्यम से नापता है।
  - लघु का मान = **1 मात्रा**
  - गुरु का मान = **2 मात्रा**

- **उदाहरण:** तुलसीदास जी की चौपाइयों (जैसे: "मंगल भवन अमंगल हारी...") की प्रत्येक पंक्ति में 16-16 मात्राएँ होती हैं। इसी तरह प्रसिद्ध रचना "ठुमक चलत रामचंद्र बाजत पैंजनिया..." में मूल रूप से 22 मात्राएँ होती हैं, लेकिन संगीत में संगत की सुविधा के लिए 2 मात्राएँ बढ़ाकर इसे 24 मात्रा कर दिया जाता है और 6 मात्रा की दादरा ताल से इसकी संगत की जाती है।

4. ताल का 'ठेका' और समान मात्रा वाली तालों में अंतर

- **ठेका:** किसी भी ताल के वे मूल बोल जिनके द्वारा उस ताल की पहचान होती है, उसे ठेका कहते हैं। इसे ताल का मूर्त रूप भी कहा जाता है।
- भारतीय संगीत में कई ऐसी तालें हैं जिनकी मात्राएँ और विभाग बिल्कुल समान हैं, लेकिन उनकी गति (लय) और प्रकृति (Mood) अलग होने के कारण उनका प्रयोग अलग-अलग जगहों पर होता है।

क) दीपचंदी और झूमरा (14 मात्राएँ, विभाग: 3/4/3/4)

- **दीपचंदी:** यह चंचल प्रकृति की ताल है, जिसका प्रयोग मध्य लय में ठुमरी, भजन, होरी और फिल्मी संगीत में होता है।
- **झूमरा:** यह गंभीर प्रकृति की ताल है, जिसका प्रयोग विलंबित लय में शास्त्रीय संगीत के 'बड़े खयाल' की संगत के लिए किया जाता है।

ख) रूपक और तीव्रा (7 मात्राएँ, विभाग: 3/2/2)

- **रूपक:** चंचल प्रकृति की ताल है, जो तबले पर बजती है। इसका प्रयोग छोटे-बड़े खयाल, गज़ल, भजन और फिल्मी गानों में होता है। **(विशेष: इसके सम पर ही खाली दर्शाया जाता है)**।
- **तीव्रा:** गंभीर प्रकृति की ताल है, जो पखावज पर बजती है। इसका प्रयोग विशेष रूप से ध्रुपद गायन शैली में होता है।

ग) त्रिताल (तीनताल) और तिलवाड़ा (16 मात्राएँ, विभाग: 4/4/4/4)

- **त्रिताल:** तबले की सबसे प्रमुख ताल है। इसका प्रयोग विलंबित, मध्य, द्रुत और अति द्रुत सभी लयों में शास्त्रीय गायन, वादन और कत्थक नृत्य की संगत में होता है।
- **तिलवाड़ा:** इसका प्रयोग केवल विलंबित लय में बड़े खयाल की संगत के लिए होता है।

घ) एकताल और चौताल (12 मात्राएँ, विभाग: 2/2/2/2/2/2)

- **एकताल:** यह तबले पर बजाई जाती है और इसका प्रयोग खयाल गायन तथा तंत्र वाद्य की संगत में सभी लयों (अति विलंबित से द्रुत) में होता है।
- **चौताल:** यह पखावज पर बजाई जाती है और इसका प्रयोग मूलतः ध्रुपद गायन की संगत में किया जाता है।

5. ताल के दस प्राण

सर्वप्रथम आचार्य नारद कृत 'संगीत मकरंद' ग्रंथ में ताल के 10 अनिवार्य तत्वों को "प्राण" की संज्ञा दी गई:

"कालो मार्गक्रियाङ्गणि ग्रह जाति प्राणा कला लयः। यति प्रस्तारकश्चेति ताल प्राणा दश स्मृताः।।"

1. **काल:** संगीत में व्यतीत हो रहे समय को मापने को काल कहते हैं, इसकी सबसे छोटी इकाई मात्रा है। ग्रंथों में आँख की पलक झपकाने के समय (पंचनिमेष काल) को एक मात्रा माना गया है।
2. **मार्ग:** किसी ताल की पहली मात्रा से अंतिम मात्रा तक पहुँचने के रास्ते या पद्धति को मार्ग कहते हैं। इसके चार प्रकार हैं—ध्रुव, चित्र, वार्टिक और दक्षिण।
3. **क्रिया:** हाथ से ताली या खाली देकर ताल दिखाने को क्रिया कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं:
   - सशब्द क्रिया: आवाज़ के साथ ताली बजाना।
   - निःशब्द क्रिया: बिना आवाज़ के हाथ एक तरफ गिराकर खाली दिखाना।
4. **अंग:** ताल के भागों या खंडों को अंग कहते हैं। उत्तर भारत में जिसे 'विभाग' कहते हैं, दक्षिण भारतीय संगीत में उसे ही 'अंग' कहा जाता है।
5. **ग्रह:** संगीत में जिस स्थान से ताल का आरंभ (ग्रहण) किया जाता है, उसे ग्रह कहते हैं। इसके दो मुख्य भेद हैं: सम और विषम (विषम के पुनः दो प्रकार हैं: अतीत और अनागत)।
6. **जाति:** ताल और बोलों की रचना के लय प्रकारों को जाति कहते हैं। मूल रूप से इसकी 5 जातियाँ हैं:
   - त्र्यस्त्र (3 मात्रा - जैसे दादरा)
   - चतुरस्त्र (4 मात्रा - जैसे त्रिताल)
   - खंड (5 मात्रा - जैसे झपताल)
   - मिश्र (7 मात्रा - जैसे रूपक)
   - संकीर्ण (9 मात्रा - जैसे वसंत ताल)
7. **कला:** मात्रिक काल के आधार पर तालों के स्वरूप को प्रदर्शित करना कला कहलाता है। प्राचीन काल में इसके अनुसार ताल को विलंबित या द्रुत किया जाता था।
8. **लय:** समय की समान रूप से चलने वाली गति को लय कहते हैं। इसके तीन मुख्य प्रकार हैं: विलंबित (धीमी गति), मध्य (साधारण गति), और द्रुत (तेज गति)।
9. **यति:** संगीत में लय के लगातार बहने के गुण या नियम को यति कहते हैं। इसके मुख्य प्रकार हैं—समा, स्रोतागता, गोपुच्छा, मृदंगा और पिपीलिका।
10. **प्रस्तार:** प्रस्तार का अर्थ है फैलाव या विस्तार। ताल के बोलों को निश्चित नियमों के तहत उलट-पुलट कर नए-नए पलटे और विस्तार तैयार करना प्रस्तार कहलाता है।

6. ताल और रसों का संबंध

संगीत में अलग-अलग मनोभावों और रसों को जगाने में ताल की गतियों का बहुत बड़ा हाथ होता है:

- **वीर और रौद्र रस:** इनके लिए धमार, चौताल, सूलताल, तीव्रा जैसी तालें और द्रुत लय (तेज़ गति) को सबसे उपयुक्त माना गया है।
- **करुण और शांत रस:** इनके भावों को उभारने के लिए हमेशा विलंबित लय (धीमी गति) का प्रयोग होता है।
- **शृंगार रस:** इसके प्रदर्शन के लिए थोड़ी चंचलता के साथ मध्य लय (साधारण गति) सबसे उत्तम मानी गई है।

अध्याय 2: संगीत लिपि पद्धति का संक्षिप्त इतिहास एवं प्रमुख तालें

1. संगीत लिपि पद्धति का इतिहास

- **शुरुआती स्वरूप:** प्राचीन काल में संगीत के शास्त्र पक्ष का लेखन काफी बाद में शुरू हुआ। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में पाँच मार्गी तालों के स्वरूप को दिखाने के लिए लघु, गुरु, प्लुत आदि चिह्नों का प्रयोग किया जाता था, जिसे ताल-लिपि का शुरुआती रूप माना जा सकता है।
- **ऐतिहासिक योगदान:** नाट्यशास्त्र के बाद मतंग मुनि (बृहद्देशी) और पंडित शारंगदेव (संगीत रत्नाकर) का योगदान उल्लेखनीय रहा। आधुनिक काल (18वीं-19वीं शताब्दी) में मौला बख्श, सौरेंद्र मोहन टैगोर और डाह्याभाई शिवराम आदि ने नई लिपियाँ अपनाईं।
- **विष्णु द्वय का युग:** 19वीं शताब्दी में संगीत जगत में दो महान विभूतियों का आगमन हुआ:
  1. **पं. विष्णु नारायण भातखंडे:** इन्होंने विभिन्न विद्वानों की मदद से बड़ौदा, ग्वालियर और लखनऊ में संगीत विद्यालयों की स्थापना कर संस्थागत शिक्षा की शुरुआत की।
  2. **पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर:** इन्होंने सन 1901 में लाहौर में 'गंधर्व महाविद्यालय' की स्थापना कर संगीत शिक्षण को आम जनता के लिए सुलभ कराया।
- **लिपि की आवश्यकता:** दोनों दिग्गजों ने महसूस किया कि विद्यालयीन शिक्षा में संगीत सिखाते समय सहज और सरल संगीत लिपि आवश्यक होगी। इन्होंने अपने-अपने नाम से दो पद्धतियाँ बनाईं, जिनमें से **'भातखंडे लिपि पद्धति'** अधिक सहज और सरल होने के कारण पूरे देश में सबसे ज़्यादा लोकप्रिय हुई।

2. भातखंडे और पलुस्कर ताल-लिपि के मुख्य चिह्न

क) भातखंडे ताल-लिपि पद्धति

- **सम (पहली मात्रा):** इसे **X** चिह्न से दिखाया जाता है।
- **ताली:** ताली की संख्या के अनुसार अंकों **(2, 3, 4...)** द्वारा दर्शाया जाता है।
- **खाली:** इसे शून्य **(0)** के चिह्न से दर्शाया जाता है।
- **विभाग:** इसे खड़ी पाई **(|)** से अलग किया जाता है।

- **एक मात्रा का समूह:** बोलों को अर्धचंद्राकार चिह्न (◠) के अंतर्गत रखकर यह दर्शाया जाता है कि इस घेरे के सभी बोल एक ही मात्रा में बोले जाएँगे।
- **अवग्रह (S):** यह संगीत में विश्राम (ठहराव) को दर्शाता है।

ख) पलुस्कर ताल-लिपि पद्धति

- **सम:** इसके लिए **1** अंक का प्रयोग होता है।
- **ताली:** इसे प्लस **(+)** के चिह्न से दिखाया जाता है।
- **खाली:** इसके लिए पलुस्कर पद्धति में **कोई चिह्न नहीं** होता।
- **विभाग:** इसमें विभागों को अलग करने के लिए किसी चिह्न का प्रयोग नहीं किया जाता।

3. प्रमुख तबला तालों का परिचय और उनके ठेके

1. त्रिताल (तीनताल)

त्रिताल में 16 मात्राएँ होती हैं जिसमें चार विभाग और प्रत्येक विभाग 4/4/4/4 मात्राओं का होता है। यह समपदी ताल और चतुरस्त्र जाति के अंतर्गत आता है। इसमें 1, 5, और 13वीं मात्रा पर ताली तथा 9वीं मात्रा पर खाली होती है।

विभाग 1				विभाग 2				विभाग 3				विभाग 4			
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**	**10**	**11**	**12**	**13**	**14**	**15**	**16**
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
X				**2**				**0**				**3**			

2. एकताल

एकताल में 12 मात्राएँ और 2/2/2/2/2/2 के हिसाब से 6 विभाग होते हैं। इसमें चार तालियाँ (1, 5, 9, 11) और दो खाली (3, 7) होती हैं। यह चतुरस्त्र जाति का समपदी ताल है।

विभाग 1		विभाग 2		विभाग 3		विभाग 4		विभाग 5		विभाग 6	
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**	**10**	**11**	**12**

धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	कत्	ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
X		**0**		**2**		**0**		**3**		**4**	

3. झपताल

झपताल में 10 मात्राएँ और 4 विभाग होते हैं। इसके विभाग विषमपदी (2/3/2/3) होते हैं और यह खंड जाति की ताल है। इसमें 1, 3, 8 पर ताली और 6वीं मात्रा पर खाली होती है।

विभाग 1		**विभाग 2**			**विभाग 3**		**विभाग 4**		
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**	**10**
धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
X		**2**			**0**		**3**		

4. रूपक ताल

रूपक ताल में 7 मात्राएँ और 3 विभाग (3/2/2) होते हैं, जिससे यह मिश्र जाति का विषमपदी ताल बनता है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसके सम (पहली मात्रा) पर ही खाली दर्शाया जाता है।

विभाग 1			**विभाग 2**		**विभाग 3**	
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**
तीं	तीं	ना	धीं	ना	धीं	ना
0			**2**		**3**	

5. दादरा ताल

दादरा ताल में 6 मात्राएँ होती हैं जो 3/3 मात्राओं के दो समान विभागों में बँटी होती हैं। पहली मात्रा पर ताली और चौथी मात्रा पर खाली होती है। यह त्र्यस्त्र जाति का समपदी ताल है।

विभाग 1			**विभाग 2**		
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**
धा	धी	ना	धा	ती	ना

X			**0**		

6. कहरवा ताल

कहरवा ताल लोक संगीत से सुगम और फिल्म संगीत में आया है। इसमें 8 मात्राएँ और 4/4 मात्राओं के दो विभाग होते हैं। पहली मात्रा पर ताली और पाँचवीं पर खाली होती है। यह चतुरस्त्र जाति का समपदी ताल है।

विभाग 1				**विभाग 2**			
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**
धा	गे	न	ति	न	क	धि	ना
X				**0**			

4. प्रमुख पखावज तालों का परिचय और उनके ठेके

1. चारताल (चौताल)

ध्रुपद गायन के साथ बजने वाली यह पखावज की समपदी ताल है, जिसमें 12 मात्राएँ और 6 विभाग (प्रत्येक में 2 मात्रा) होते हैं। इसमें चार ताली (1, 5, 9, 11) और दो खाली (3, 7) होती हैं। इसकी जाति चतुरस्त्र है।

विभाग 1		**विभाग 2**		**विभाग 3**		**विभाग 4**		**विभाग 5**		**विभाग 6**	
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**	**10**	**11**	**12**
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दि	ता	तिट	कत	गदि	गन
X		**0**		**2**		**0**		**3**		**4**	

2. सूलताल

यह मध्य और द्रुत लय में ध्रुपद अंग के साथ बजने वाली ताल है। इसमें 10 मात्राएँ और 5 विभाग (2/2/2/2/2) होते हैं। इसमें तीन ताली (1, 5, 7) और दो खाली (3, 9) होती हैं। यह चतुरस्त्र जाति का समपदी ताल है।

विभाग 1		**विभाग 2**		**विभाग 3**		**विभाग 4**		**विभाग 5**	
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**	**10**

धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन
X		**0**		**2**		**3**		**0**	

3. तीव्रा (तेवरा)

तेज़ गति में बजने के कारण इसे तीव्रा कहा जाता है। इसमें 7 मात्राएँ और 3 विभाग (3/2/2) होते हैं, जिससे यह मिश्र जाति का विषमपदी ताल है। इसमें कोई खाली नहीं होती, केवल तीन तालियाँ (1, 4, 6) होती हैं।

विभाग 1			**विभाग 2**		**विभाग 3**	
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**
धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
X			**2**		**3**	

4. धमार ताल

14 मात्राओं की यह ताल विशेष रूप से होरी गायन की संगत में बजती है। इसमें 4 विभाग होते हैं जो विषमपदी संरचना में होते हैं और ताल विभाग की दृष्टि से यह संकीर्ण जाति की ताल है। इसमें 1, 6, 11 पर ताली और 8वीं मात्रा पर खाली होती है। इसका सम बायें पर बजता है।

विभाग 1					**विभाग 2**		**विभाग 3**			**विभाग 4**			
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**	**10**	**11**	**12**	**13**	**14**
क	धिट	धिट	धा	S	ग	तिट	तिट	ता	S	क	तेट	तेट	ता
X					**2**		**0**			**3**			

5. तिलवाड़ा ताल

यह 16 मात्राओं की ताल है जिसे 'विलंबित तीनताल' भी कहा जाता है क्योंकि इसकी संरचना पूरी तरह त्रिताल जैसी होती है। इसमें 4 विभाग (4/4/4/4) होते हैं। इसकी ताली 1, 5, 13 पर और खाली 9वीं मात्रा पर होती है।

विभाग 1				**विभाग 2**				**विभाग 3**				**विभाग 4**			
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**	**10**	**11**	**12**	**13**	**14**	**15**	**16**

धा	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं
X				**2**				**0**				**3**			

---

5. पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी का संक्षिप्त परिचय

- **जन्म:** 10 अगस्त, 1860 को वालकेश्वर, मुंबई में हुआ था।
- **शिक्षा:** इन्होंने बी.ए. तथा एल.एल.बी. (वकालत) की उच्च परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं।
- **संगीत साधना:** बचपन से ही ये बाँसुरी और गायन में निपुण थे, बाद में इन्होंने सितार वादन भी सीखा।
- **महान कार्य:** प्राचीन बंदिशों को लुप्त होने से बचाने के लिए इन्होंने स्वर/ताल लिपि का आविष्कार किया। इन्होंने क्रमिक पुस्तक मालिका (भाग 1-6), हिंदुस्तानी संगीत पद्धति, श्रीमल्लक्ष्य संगीतम जैसे श्रेष्ठ ग्रंथों की रचना की।
- **संस्थानों की स्थापना:** इनके प्रयासों से बड़ौदा, ग्वालियर में 'माधव संगीत विद्यालय' (1918) और लखनऊ में 'मैरिस कॉलेज ऑफ हिंदुस्तानी मयूज़िक' (1926) खुला, जो आज **'भातखंडे संस्कृति विश्वविद्यालय'** के नाम से जाना जाता है और संचालित है।
- **निधन:** संगीत जगत के इस महान उद्धारक ने सन 1936 में मुंबई में अंतिम सांस ली।

@anshurajhans

पुस्तक: संगीत - तबला एवं पखावज हमारे अवनद्ध वाद्य, कक्षा 12

अध्याय 3: तबला और पखावज के स्वतंत्र वादन में बंदिशों का महत्व

1. स्वतंत्र वादन (Solo Playing) की मूल अवधारणा

- **वाद्यों का ऐतिहासिक उद्देश्य:** संगीत के क्षेत्र में जितने भी वाद्य (घन, अवनद्ध, तंत्र या सुषिर) बनाए गए, वे मूल रूप से गायन की संगति (Accompaniment) के लिए ही आविष्कृत हुए थे। इनमें विभिन्न प्रकार की वीणाएँ, बाँसुरी, झाँझ, पखावज और तबला शामिल हैं।
- **स्वतंत्र अस्तित्व का विकास:** बदलते समय के साथ महान और विद्वान कलाकारों के कठिन परिश्रम और कला कौशल के कारण इन वाद्यों ने संगति से ऊपर उठकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित किया। अवनद्ध वाद्यों में तबला और पखावज इसमें सबसे प्रमुख हैं।
- **स्वतंत्र वादन की परिभाषा:** जब कोई तबला या पखावज वादक किसी मुख्य कलाकार (गायन, वादन या नृत्य) का अनुगामी न होकर, मंच पर पूरी स्वतंत्रता के साथ अपनी इच्छा, विवेक और कलात्मक क्षमता के अनुसार अकेले वादन प्रस्तुत करता है, तो उसे **स्वतंत्र वादन, एकल वादन, मुक्त वादन या सोलो (Solo)** कहा जाता है।
- **लहरा या नगमा की अनिवार्यता:** स्वतंत्र वादन पूरी तरह से अकेला नहीं होता। लय और ताल की निश्चित समय-सीमा (आवर्तन) को दर्शकों को दिखाने और वादक के संतुलन के लिए मंच पर एक स्वर वाद्य (जैसे सारंगी, हरमोनियम, दिलरुबा) का होना ज़रूरी है, जो लगातार एक निश्चित धुन बजाता रहता है। इस धुन को **लहरा या नगमा** कहते हैं।
- **वादन की दो शैलियाँ (बाज़):**
  1. **खुले बोलों का बाज़ (खुला बाज़):** यह मुख्य रूप से पखावज वादन और तबले के कुछ विशेष घरानों (जैसे पंजाब घराना) में बजता है, जिसमें ज़ोरदार और गूँजने वाले वर्णों की प्रधानता होती है।
  2. **बंद बोलों का बाज़ (बंद बाज़):** यह मुख्य रूप से तबले के दिल्ली घराने की विशेषता है, जिसमें चांट (किनार) के बोलों और मद्धम ध्वनि का सटीक प्रयोग होता है।

2. स्वतंत्र वादन की प्रमुख बंदिशें (Ultra Detailed Definitions)

क) पेशकार (Peshkar)

- **शाब्दिक अर्थ:** 'पेशकार' एक फारसी शब्द है जिसका अर्थ है 'सामने पेश करना' या 'प्रस्तुत करना'।
- **स्थान:** यह स्वतंत्र वादन की शुरुआत में बजाई जाने वाली सबसे पहली बंदिश है।

- **विशेषताएँ:** यह बहुत ही गंभीर, सुरीली और मद्धम (विलंबित) गति में बजाई जाती है।
  - इसके माध्यम से वादक अपने घराने की गरिमा, हाथ की तैयारी और सुरीलेपन को श्रोताओं के सामने 'पेश' करता है।
  - इसमें मुख्य रूप से 'धिन', 'धागे', 'तिरकिट' जैसे वर्णों का कलात्मक विस्तार (प्रस्तार) किया जाता है।

ख) उठान (Uthan)

- **स्थान:** स्वतंत्र वादन के प्रारंभ में जब वादक सीधे पेशकार न बजाकर एक विशेष ज़ोरदार और चंचल रचना से शुरुआत करता है, तो उसे 'उठान' कहते हैं।
- **घराना संबंध:** यह मुख्य रूप से पखावज वादन और तबले के बनारस घराने की वादन शैली की मुख्य पहचान है।
- **विशेषताएँ:** इसके बोल बहुत खुले, बुलंद, वीर रस प्रधान और ज़ोरदार होते हैं जो दर्शकों का ध्यान तुरंत आकर्षित कर लेते हैं। यह रचना हमेशा एक भारी तिहाई के साथ समाप्त होकर ताल के 'सम' पर आकर ठहरती है।

ग) कायदा (Kayda)

- **शाब्दिक अर्थ:** 'कायदा' एक अरबी शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'नियम या कानून' होता है।
- **परिभाषा:** नियमों में बंधी हुई वह मुख्य रचना जिसके मूल बोलों को बिना बदले, निश्चित नियमों के तहत उलट-पुलट कर विस्तार किया जाता है, कायदा कहलाती है।
- **मुख्य अंग:**
  - **पलटा:** कायदे के मूल बोलों के क्रम को बदलकर जो नए-नए विस्तार बनाए जाते हैं, उन्हें पलटा कहते हैं।
  - **तिहाई:** कायदे के अंत में एक निश्चित बोल-समूह को तीन बार बजाकर 'सम' पर आने की गणितीय रचना को तिहाई कहते हैं।
  - **नियम:** इसमें 'भरी' (ताली) और 'खाली' का नियम बहुत कड़ाई से लागू होता है।

घ) बाँट (Baant)

- **परिभाषा:** कायदे की तरह ही बोलों को अलग-अलग हिस्सों में विभाजित करके (बाँटकर) विस्तार करने वाली चंचल रचना को बाँट कहते हैं। यह अक्सर कथक नृत्य की संगत और द्रुत लय के वादन में बजती है।

- **बाँट और कायदा में मुख्य अंतर:** कायदे का विस्तार बहुत गंभीर और कड़े नियमों के तहत होता है, जबकि बाँट में नियमों की उतनी कड़ाई नहीं होती। बाँट के बोल अधिक चंचल, लयदार और गमक प्रधान होते हैं।

ङ) रेला (Rela)

- **परिभाषा:** जब बहुत ही द्रुत (अति तेज़) गति में बोलों का प्रवाह बाढ़ (Flood) या रेलगाड़ी की गति की तरह लगातार बिना रुके बहता है, तो उसे रेला कहते हैं।
- **विशेषताएँ:** इसमें मुख्य रूप से छोटे, रगड़दार और द्रुत गति में बजने वाले वर्णों (जैसे: तिरकिट, धिरधिर, कततक, तकतिरकिट) का प्रयोग होता है। रेले को स्पष्टता से बजाने के लिए वादक के हाथ में बहुत उच्च स्तर की तैयारी, सफ़ाई और रियाज़ की आवश्यकता होती है।

च) गत (Gat)

- **परिभाषा:** गत तबला वादन की अत्यंत प्राचीन, मधुर, चमत्कारी और लयबद्ध बंदिश है। यह मुख्य रूप से पूरब अंग यानी लखनऊ और फर्रुखाबाद घराने की विशेषता है।
- **कलात्मक प्रकार:**
  - **दोपल्ली गत:** वह गत जिसके बोलों की बनावट में दो स्पष्ट भाग या पलड़े दिखाई देते हैं।
  - **तिपल्ली गत:** जिसके बोल तीन अलग-अलग खंडों या तीन अलग-अलग लयों के सुंदर प्रभाव में बुने जाते हैं।
  - **चौपल्ली गत:** जो चार भागों में बंटी होती है और बहुत ही चमत्कारी व द्रुत प्रभाव पैदा करती है।

छ) टुकड़ा और मुखड़ा (Tukda and Mukhda)

- **टुकड़ा:** मात्राओं की निश्चित संख्या में बंधी वह छोटी, कसी हुई और ज़ोरदार रचना जो कम से कम एक आवर्तन (या आधे आवर्तन) की होती है और अंत में तिहाई के साथ सीधे 'सम' पर आकर समाप्त होती है, टुकड़ा कहलाती है।
- **मुखड़ा:** ताल के 'सम' पर आने से ठीक कुछ मात्राओं पहले (जैसे 2 या 4 मात्रा पहले) शुरू होने वाली चंचल और सुंदर रचना, जो एक कलात्मक मोड़ के साथ सीधे सम को पकड़ती है, मुखड़ा कहलाती है। यह मुख्य रूप से संगत के दौरान सम को चमकाने का माध्यम है।

ज) परण (Paran)

- **परिभाषा:** पखावज वादन की सबसे मुख्य, भारी, ज़ोरदार और गंभीर बंदिश को 'परण' कहते हैं। वर्तमान में इसे तबले पर भी बहुत शौक से बजाया जाता है।
- **विशेषताएँ:** इसमें पखावज के खुले, दमदार और गूँजने वाले वीर रस प्रधान बोलों (जैसे: धिट, तिट, कत, गदिगन, धिलांग) का प्रयोग होता है। इसके अंत में भी एक भारी तिहाई होती है जो सम पर आकर समाप्त होती है।

झ) चक्रदार और फर्द (Chakradar and Fard)

- **चक्रदार:** जब किसी साधारण टुकड़े या परण को बिना रुके लगातार तीन बार बजाया जाए और तीसरी बार का आखिरी बोल बिल्कुल सही गणित के साथ ताल के 'सम' पर आकर गिरे, तो उसे चक्रदार बंदिश (चक्रदार टुकड़ा/परण) कहते हैं।
- **फर्द:** यह तबले की एक अत्यंत दुर्लभ, कठिन और उच्च कोटि की स्वतंत्र रचना है। 'फर्द' का शाब्दिक अर्थ होता है 'अकेला या अद्वितीय'। इसकी विशेषता यह है कि इसमें पूरा आवर्तन बिना किसी विभाग या खाली के नियम के, एक ही अखंड प्रवाह में बजता है और इसकी कोई पारंपरिक तिहाई नहीं होती।

3. घराना पद्धति और आधुनिक समय की चुनौतियाँ

- **घराना परंपरा:** तबला और पखावज वादन में गुरु-शिष्य परंपरा के तहत अलग-अलग अनूठी वादन शैलियों का विकास हुआ, जिन्हें घराना कहा जाता है (जैसे: दिल्ली, लखनऊ, बनारस, फर्रुखाबाद, पंजाब और अजराड़ा घराना)।
- **आधुनिक चुनौती:** वर्तमान समय में इंटरनेट, सोशल मीडिया और सूचना तकनीक के अत्यधिक प्रसार के कारण विभिन्न घरानों के विशिष्ट बोल और शैलियाँ आपस में मिल (Mix) रही हैं, जिससे घरानों की मौलिकता खोने का डर है।
- **महत्वपूर्ण सुझाव (For Exam):** परीक्षा और कला की शुद्धता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि स्वतंत्र वादन करते समय कलाकार अपने मूल घराने के निकास (बोल निकालने का तरीका), बाज़ की शुद्धता और बंदिशों के पारंपरिक और प्रामाणिक स्वरूप को पूरी तरह बनाए रखे।

अध्याय 4: विभिन्न वाद्यों का परिचय (मध्यकालीन अवनद्ध वाद्य)

इस अध्याय में मध्यकाल और उससे पूर्व के कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक अवनद्ध (चमड़े से मढ़े हुए) वाद्यों का विस्तृत विवरण दिया गया है।

1. पणव (Panava)

- **ऐतिहासिक संदर्भ:** पणव एक अति प्राचीन और ऐतिहासिक अवनद्ध वाद्य है। इसका लिखित उल्लेख भारतीय इतिहास के प्राचीनतम ग्रंथों जैसे—सूत्र साहित्य, जातक साहित्य, रामायण, महाभारत, और भरत मुनि के नाट्यशास्त्र आदि में प्रमुखता से मिलता है।
- **शारीरिक बनावट (Structure):**
  - यह एक द्विमुखी वाद्य है (जिसके दोनों तरफ मुख होते हैं)।
  - इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका मध्य का भाग भीतर की तरफ दबा हुआ (संकीर्ण या संकुचित) होता है।
  - इसके दोनों मुखों को चमड़े से मढ़ा जाता है, जिसे 'पुड़ी' कहते हैं।
  - इन दोनों मुखों (पुड़ियों) को आपस में जोड़ने और कसने के लिए सूत की डोरी का प्रयोग किया जाता था, जिसे पुड़ी के किनारों पर बाँधा जाता था।
- **वादन विधि (Playing Technique):** वादक अपने बायें हाथ की अँगुलियों से सूत की डोरी को कसते और ढीला करते थे। डोरी को कसने से वाद्य का स्वर (Pitch) ऊँचा और ढीला करने से नीचा होता था। वादन के लिए दाहिने हाथ की कनिष्ठा (Little Finger) और अनामिका (Ring Finger) के आगे के हिस्से (पोरों) से चमड़े पर आघात (Strokes) किया जाता था।
- **समानता:** वर्तमान लोक संगीत में बजाया जानेवाला 'हुडुक्का' वाद्य और प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में वर्णित 'पणव' वाद्य संरचना और वादन में लगभग एक समान हैं।
- **पणव के पटाक्षर (बोल):** तत्कालीन शास्त्रीय संगीत में इसके बोलों की संख्या बहुत अधिक थी, जिससे सिद्ध होता है कि यह अपने समय का एक मुख्य वाद्य था। इसके मुख्य पटाक्षर निम्नलिखित हैं: **क, ख, ग, ट, ण, दे, वा, ह, र, ल, कु, लि, लं, घ्र, णे, कि, रि, किण्ण।**

2. हुडुक्का (Hudukka)

- **ऐतिहासिक संदर्भ:** हुडुक्का वाद्य का विशद वर्णन भरत मुनि के नाट्यशास्त्र, पंडित शारंगदेव के संगीत रत्नाकर, और पंडित दामोदर के संगीत पारिजात जैसे विख्यात ग्रंथों में मिलता है।
- **अन्य नाम:** ग्रंथों में इसे आवज, हुडुक, और पणव आदि नामों से भी संबोधित किया गया है।
- **संरचना और वादन:**
  - संगीत रत्नाकर और संगीत पारिजात के अनुसार, हुडुक्का वाद्य को बाँस की तीलियों अथवा लकड़ी की सहायता से निर्मित आघात पट्टी (Stripe) द्वारा बजाया जाता था।
  - यह वाद्य भी मध्य में दबा हुआ होता है और इसकी डोरियों को खींचकर स्वर में बदलाव किया जाता है।

3. दर्दुर (Dardur)

- **परिचय:** दर्दुर भी प्राचीन काल का एक प्रमुख अवनद्ध वाद्य है, जिसका आकार मिट्टी के घड़े (घट) से मिलता-जुलता था।
- **महत्व:** नाट्यशास्त्र के अनुसार त्रिपुष्कर (प्राचीन काल के तीन मुख्य अवनद्ध वाद्यों का समूह - मृदंग, पणव और दर्दुर) में दर्दुर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण था। संगीत के नाद को गंभीरता और गहराई प्रदान करने के लिए दर्दुर का प्रयोग किया जाता था।

4. कुडुआ (Kudua)

- **ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:** कुडुआ वाद्य मध्यकाल का एक विशिष्ट अवनद्ध वाद्य है। इस वाद्य के नाम पर ही पखावज और तबला वादन की प्रसिद्ध 'कुदऊ सिंह शैली' का नामकरण भी प्रभावित माना जाता है।
- **बनावट:** यह वाद्य मिट्टी या धातु के एक गोल कटोरे जैसी आकृति का होता था, जिसके मुख को चमड़े से मढ़कर डोरी या चमड़े के बद्धियों की सहायता से कसा जाता था। इसका प्रयोग मुख्य रूप से लोक वाद्यों और उत्सवों के संगीत में संगति के लिए होता था।

5. डमरू (Damru)

- **धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्व:** डमरू को संसार का सबसे प्राचीन अवनद्ध वाद्य माना जाता है, जिसकी उत्पत्ति भगवान शिव के तांडव नृत्य से जुड़ी है। यह वाद्य भारतीय संस्कृति और लोक चेतना में गहराई से समाया हुआ है।
- **संरचना:** यह भी एक मध्य संकुचित (Hourglass shaped) द्विमुखी वाद्य है। इसके दोनों मुखों पर चमड़ा मढ़ा होता है। इसके मध्य भाग में एक डोरी बंधी होती है, जिसके दोनों सिरों पर पत्थर या लकड़ी की छोटी गोलियाँ लगी होती हैं।
- **वादन विधि:** वादक इसे बीच से पकड़कर हाथ की कलाई को तेज़ी से हिलाता या घुमाता है, जिससे डोरी की गोलियाँ दोनों तरफ के चमड़े पर बारी-बारी से आघात करती हैं और "डम-डम" की ध्वनि उत्पन्न होती है।

अध्याय 4 की मुख्य परीक्षा-रणनीति (High-Scoring Strategy):

1. पणव की बनावट को अच्छे से याद रखें क्योंकि परीक्षा में "पणव और हुडुक्का की तुलना" या "पणव की वादन विधि" पर 5 नंबर का प्रश्न अक्सर आता है।
2. त्रिपुष्कर का संदर्भ: पणव, दर्दुर और मृदंग प्राचीन काल के पूजनीय वाद्य थे, स्वतंत्र वादन के इतिहास में इनका नाम लिखना उत्तर को प्रामाणिक बनाता है।

अध्याय 5: तबला एवं पखावज वाद्य की उत्पत्ति तथा विकास

1. तबला वाद्य की उत्पत्ति से संबंधित विभिन्न मत और उनका खंडन

क) पखावज को काटकर बनाने का मत (पहला मत)

- **धारणा:** संगीत जगत में लंबे समय तक यह धारणा प्रचलित थी कि पखावज (मृदंग) को बीच से काटकर तबले के दो भागों (दायाँ और बायाँ) का निर्माण किया गया है।
- **खंडन (तार्किक व्याख्या):** आधुनिक विद्वानों ने इस मत का पूरी तरह खंडन किया है। उनका तर्क है कि यदि पखावज को बीच से काटा जाए, तो उसका प्रत्येक भाग नीचे से पूरी तरह खुला रहेगा (जैसे विदेशी वाद्य 'बोंगो')। इसके विपरीत, तबले के दोनों भाग (डीगा और ताबल) नीचे से पूरी तरह बंद होते हैं। अतः यह मत वैज्ञानिक दृष्टि से अमान्य है।

ख) अमीर खुसरो द्वारा आविष्कार का मत (दूसरा मत)

- **धारणा:** एक अन्य मत के अनुसार, 13वीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी कवि और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य अमीर खुसरो (1253 ई. से 1325 ई.) को तबले का आविष्कारक माना जाता है।
- **खंडन (तार्किक व्याख्या):** स्वयं अमीर खुसरो ने अपनी किसी भी पुस्तक या रचना में यह उल्लेख नहीं किया है कि उन्होंने तबले जैसे किसी वाद्य का आविष्कार किया है।
  - अमीर खुसरो के काल से लेकर 18वीं शताब्दी तक के किसी भी प्रामाणिक संगीत ग्रंथ में 'तबला' शब्द या उसके चित्र का कोई प्रमाण नहीं मिलता है।
  - खिलजी के दरबारी इतिहासकारों ने भी अमीर खुसरो के अन्य आविष्कारों (जैसे सितार और कई रागों) का ज़िक्र किया है, परंतु तबले का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता।

ग) स्वाति मुनि का मत (पौराणिक/शास्त्रीय मत)

- **धारणा:** नाट्यशास्त्र के अनुसार, एक बार स्वाति मुनि जब जलाशय से जल लेने गए, तो वहाँ आकाश से गिरती हुई वर्षा की बूंदों की कमल के पत्तों पर पड़ने वाली विभिन्न ध्वनियों को सुना।
- **परिणाम:** प्रकृति की इस लयबद्ध ध्वनि से प्रेरित होकर उन्होंने विश्वकर्मा की सहायता से 'मृदंग' और उसके बाद अन्य ऊर्ध्वक वाद्यों का निर्माण किया, जिन्हें तबले का पूर्वज माना जाता है।

2. प्राचीन 'त्रिपुष्कर' और तबले का अंतर्संबंध

- **त्रिपुष्कर की अवधारणा:** भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में प्राचीन काल के तीन मुख्य अवनद्ध वाद्यों के समूह को 'त्रिपुष्कर' कहा गया है, जिसमें मृदंग (हस्त्यक), पणव और दर्दुर शामिल थे।
- **मृदंग के तीन अंग:** प्राचीन काल के मृदंग या पुष्कर वाद्य के तीन मुख या भाग होते थे:
  1. **ऊर्ध्वक:** जो सीधे खड़े रखे जाते थे।
  2. **आंकीय:** जो गोद या जांघ पर आड़े रखकर बजाए जाते थे।
  3. **आलिंग्य:** जो वादक के गले या छाती से लगाकर बजाए जाते थे।
- **तबले से साम्यता:** आधुनिक विद्वानों का मानना है कि त्रिपुष्कर के अंतर्गत आने वाले 'ऊर्ध्वक' (खड़े वाद्यों) की बनावट, वादन शैली और उनके मुख पर लगाया जाने वाला 'मसाला' (स्याही का प्रारंभिक रूप) वर्तमान समय के तबले (दाहिने भाग) से अत्यधिक मेल खाता है। अतः तबला कोई विदेशी वाद्य नहीं, बल्कि भारतीय ऊर्ध्वक वाद्यों का ही विकसित रूप है।

3. तबला वाद्य के विकास में घरानों का ऐतिहासिक योगदान

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से तबला वादन में विशिष्ट गुरु-शिष्य परंपराओं का उदय हुआ, जिन्हें 'घराना' कहा गया। इन घरानों ने तबले को संगति से ऊपर उठाकर स्वतंत्र वादन के शिखर तक पहुँचाया:

दिल्ली घराना (निकास और तकनीक)

- **संस्थापक:** उस्ताद सिधार खाँ ढाढ़ी को दिल्ली घराने का जन्मदाता माना जाता है।
- **विशेषता:** यह तबले का सबसे प्राचीन घराना है, जिसे 'बंद बोलों का बाज़' कहा जाता है। इसमें हाथ के दो उंगलियों का प्रयोग, चांट (किनार) पर स्पष्ट बोल निकालना और 'किरण' की सुरीली गूँज पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके मुख्य बोल 'धिन-ना', 'तित' आदि हैं।

लखनऊ और फर्रुखाबाद घराना (पूरब अंग का वैभव)

- **लखनऊ घराना:** उस्ताद सिधार खाँ के पौत्रों (मियाँ बख्शू खाँ) द्वारा विकसित हुआ, जो कथक नृत्य की संगति के प्रभाव में आया। यहाँ खुले और ज़ोरदार बोलों (जैसे थप, गद्-दी-गन) का समावेश हुआ और 'गत' तथा 'परण' जैसी बंदिशों का अत्यधिक विकास हुआ।
- **फर्रुखाबाद घराना:** उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ द्वारा स्थापित हुआ, जो अपनी अत्यंत मधुर और लयबद्ध 'गतों' के लिए पूरे भारतीय संगीत में प्रसिद्ध है।

बनारस घराना (उठान और अनूठी परंपरा)

- **संस्थापक:** पंडित राम सहाय जी ने बनारस घराने की नींव रखी।
- **विशेषता:** इस घराने में पखावज के खुले बोलों और तबले के बंद बोलों का अद्भुत मिश्रण मिलता है। यहाँ स्वतंत्र वादन की शुरुआत 'पेशकार' के स्थान पर 'उठान' से करने की अनूठी परंपरा है।

पंजाब और अजराड़ा घराना

- **अजराड़ा घराना:** दिल्ली घराने के शिष्यों (कल्लू-मीरू खाँ) द्वारा विकसित हुआ, जहाँ 'तीसरे पोर का बाज़' और 'खाँचेदार' (आड़ी लय) के कायदों का बहुत सुंदर प्रयोग होता है।
- **पंजाब घराना:** पखावज की वादन शैली से अत्यधिक प्रभावित रहा, जहाँ बेहद कठिन गणितीय लयकारियों और खुले वर्णों का प्रयोग होता है। उस्ताद अल्ला रक्खा खाँ और उस्ताद जाकिर हुसैन इसी घराने के देदीप्यमान नक्षत्र हैं।

4. ऐतिहासिक ग्रंथ 'रिसाल-ए-तबला नवाज़ी'

- **परिचय:** यह मध्यकाल के अंत और आधुनिक काल के प्रारंभ के संधिकाल में लिखा गया तबला वादन पर आधारित एक अत्यंत महत्वपूर्ण और दुर्लभ ऐतिहासिक हस्तलिखित ग्रंथ (Manuscript) है।
- **महत्व:** इस ग्रंथ में तत्कालीन समय में प्रचलित तबला बजाने की विधियों, बोलों के निकास स्थान, और प्रारंभिक घरानों की बंदिशों का लिपिबद्ध विवरण मिलता है। यह ग्रंथ प्रमाणित करता है कि 18वीं-19वीं शताब्दी तक तबला भारतीय शास्त्रीय संगीत के केंद्र में पूरी तरह स्थापित हो चुका था।

5. पखावज (मृदंग) के घराने और विकास

पखावज वादन की परंपरा मुख्य रूप से ध्रुपद गायन शैली और मंदिर संगीत (हवेली संगीत) के साथ विकसित हुई। इसके दो सबसे प्रमुख ऐतिहासिक घराने निम्नलिखित हैं:

कुदऊ सिंह घराना

- **संस्थापक:** पखावज सम्राट कुदऊ सिंह जी इस घराने के मूल स्तंभ थे।
- **विशेषता:** इस घराने की वादन शैली अत्यंत वीर रस प्रधान, ओजपूर्ण और बुलंद बोलों से युक्त है। इनके द्वारा रचित परणें और बंदिशें अपनी अद्भुत थाप और गूँज के लिए जानी जाती हैं।

नाना पानसे घराना

- **संस्थापक:** नाना साहेब पानसे जी ने इस घराने को स्थापित किया। उनका असली नाम 'लक्ष्मणराव पानसे' था।
- **विशेषता:** यह घराना पखावज वादन में सुरीलेपन, सफ़ाई और बंद बोलों के कलात्मक प्रयोग के लिए प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र और मध्य भारत के संगीत में इस घराने का योगदान अतुलनीय है।

@anshurajhans

पुस्तक: संगीत - तबला एवं पखावज हमारे अवनद्ध वाद्य, कक्षा 12

अध्याय 6: कर्नाटक ताल-लिपि पद्धति की अवधारणा

1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास

- **दो शाखाएँ:** भारतीय शास्त्रीय संगीत की दो मुख्य शाखाएँ हैं—हिन्दुस्तानी (उत्तर भारतीय) और कर्नाटक (दक्षिण भारतीय) संगीत। दोनों पद्धतियों में ताल का महत्वपूर्ण स्थान है, परंतु उनके नाम, रचना और हाथ पर दर्शाने के तरीकों में भिन्नता है।
- **प्राचीन पद्धति:** कर्नाटक संगीत में प्राचीन काल में **'अष्टोत्तर शत' (108)** ताल पद्धति का प्रचलन था। यह पद्धति अत्यंत क्लिष्ट (कठिन और जटिल) थी, जिसके कारण इसके कई तालों का व्यावहारिक प्रयोग बंद हो गया और वे लुप्त हो गए।
- **सूलादि सप्त ताल पद्धति का उदय:** 108 तालों की जटिलता को सरल बनाने के लिए 14वीं शताब्दी के आस-पास एक नवीन पद्धति का प्रचलन हुआ। दक्षिण भारतीय संगीत के महान विद्वान और विख्यात वाग्गेयकार **पंडित पुरंदरदास** ने लोकरुचि के अनुसार 'सूलादि' नामक सांगीतिक रचनाएँ कीं, जिनमें उन्होंने मुख्य रूप से सात (7) तालों का प्रयोग किया। इसी कारण इन्हें **'सूलादि सप्त ताल'** कहा जाता है।

2. कर्नाटक ताल के छह अंग (Shadang)

हिन्दुस्तानी संगीत में जहाँ ताल के खंडों को 'विभाग' कहते हैं, वहीं कर्नाटक संगीत में ताल की रचना के लिए छह अंगों का निर्धारण किया गया है, जिन्हें **'षडंग'** कहा जाता है:

1. **अणुद्रुत (Anudrutam):**
   - चिह्न: अर्धचंद्र (◡)
   - अक्षरकाल (मात्रा मान): 1 अक्षरकाल (मात्रा)
   - क्रिया: केवल एक थाप (घात) मारकर इसे हाथ पर दर्शाया जाता है।

2. **द्रुत (Drutam):**
   - चिह्न: शून्य (O)
   - अक्षरकाल (मात्रा मान): 2 अक्षरकाल
   - क्रिया: एक थाप और एक विसर्जन (हाथ को हवा में लहराना या पलटना)।

3. **लघु (Laghu):**

- चिह्न: खड़ी पाई (I)
- अक्षरकाल (मात्रा मान): इसका मान परिवर्तनशील होता है (3, 4, 5, 7 या 9 मात्रा)। यह ताल की जाति पर निर्भर करता है।
- क्रिया: एक थाप और उसके बाद अँगुलियों की गिनती।

4. **गुरु (Guru):**
   - चिह्न: वक्र रेखा या अंक 8 जैसा (8)
   - अक्षरकाल (मात्रा मान): 8 अक्षरकाल

5. **प्लुत (Plutam):**
   - चिह्न: खड़ी पाई के साथ वक्र रेखा (I_8)
   - अक्षरकाल (मात्रा मान): 12 अक्षरकाल

6. **काकपाद (Kakapadam):**
   - चिह्न: प्लस या क्रॉस जैसा चिह्न (+)
   - अक्षरकाल (मात्रा मान): 16 अक्षरकाल

विशेष नियम: सप्तताल स्वरूप (व्यावहारिक संगीत) में केवल शुरुआती तीन अंगों—लघु (I), द्रुत (O) और अणुद्रुत (◡) का ही प्रयोग होता है। अंतिम तीन अंग केवल सैद्धांतिक हैं। प्रत्येक ताल में लघु (I) का होना अनिवार्य है।

3. ताल की पाँच जातियाँ (Five Jatis)

कर्नाटक संगीत में ताल के मुख्य अंग 'लघु' (I) का मान निश्चित नहीं होता, बल्कि वह ताल की जाति के आधार पर बदलता रहता है। इस आधार पर 5 जातियाँ होती हैं:

1. **त्र्यस्त्र जाति (Tryasra Jati):** लघु का मान = 3 अक्षरकाल (मात्रा)
2. **चतुरस्त्र जाति (Chaturasra Jati):** लघु का मान = 4 अक्षरकाल
3. **खंड जाति (Khanda Jati):** लघु का मान = 5 अक्षरकाल
4. **मिश्र जाति (Misra Jati):** लघु का मान = 7 अक्षरकाल
5. **संकीर्ण जाति (Sankirna Jati):** लघु का मान = 9 अक्षरकाल

4. सूलादि सप्त ताल और 35 तालों की रचना (35 Tala System)

मूल रूप से कर्नाटक संगीत में मुख्य 7 ताल होते हैं। जब इन 7 तालों में 5 जातियों के अनुसार लघु (I) का मान बदला जाता है, तो कुल 7 x 5 = 35 तालों का निर्माण होता है।

<u>मुख्य 7 तालों के नाम, अंग और संरचना:</u>

1. **ध्रुव ताल (Dhruva Tala):**
   - अंग स्वरूप: I O I I (लघु, द्रुत, लघु, लघु)
   - सबसे लंबा रूप: संकीर्ण जाति का ध्रुव ताल (9+2+9+9 = 29 मात्रा)।

2. **मठ्य ताल (Matya Tala):**
   - अंग स्वरूप: I O I (लघु, द्रुत, लघु)

3. **रूपक ताल (Rupaka Tala):**
   - अंग स्वरूप: O I (द्रुत, लघु)
   - विशेष: हिन्दुस्तानी रूपक में सम पर खाली होता है, परंतु कर्नाटक रूपक द्रुत से शुरू होता है।

4. **झम्पा ताल (Jhampa Tala):**
   - अंग स्वरूप: I ◡ O (लघु, अणुद्रुत, द्रुत)

5. **त्रिपुट ताल (Triputa Tala):**
   - अंग स्वरूप: I O O (लघु, द्रुत, द्रुत)
   - विशेष: चतुरस्त्र जाति का त्रिपुट ताल ही हिन्दुस्तानी संगीत के 'त्रिताल' (16 मात्रा) के समान माना जाता है।

6. **अट्ट ताल (Atta Tala):**
   - अंग स्वरूप: I I O O (लघु, लघु, द्रुत, द्रुत)

7. **एकताल (Eka Tala):**
   - अंग स्वरूप: I (केवल एक लघु)
   - सबसे छोटा रूप: त्र्यस्त्र जाति का एकताल (केवल 3 मात्रा का)।

5. क्रिया के प्रकार (Kriya)

हाथ से ताल दिखाने की विधि को क्रिया कहते हैं। इसके दो मुख्य भेद हैं:

- **सशब्द क्रिया (Sashabda Kriya):** आवाज़ के साथ हाथ पर थाप (घात) मारना। जैसे—'लघु' की पहली मात्रा या 'द्रुत' की पहली मात्रा।
- **निःशब्द क्रिया (Nishabda Kriya):** बिना आवाज़ के हाथ हिलाकर या अँगुलियों से संख्या गिनकर समय दिखाना। जैसे—लघु की अँगुलियाँ गिनना या द्रुत का विसर्जन (हाथ पलटना)।

6. हिन्दुस्तानी और कर्नाटक ताल पद्धति में मुख्य अंतर

विशेषता	हिन्दुस्तानी (उत्तर भारतीय) पद्धति	कर्नाटक (दक्षिण भारतीय) पद्धति
मूल रचना	ताल 'विभागों' (Bar lines) में बंटे होते हैं।	ताल 'षडंग' (मुख्यतः लघु, द्रुत, अणुद्रुत) पर आधारित हैं।
मात्रा निर्धारण	ताल का ठेका और मात्राएँ पूरी तरह निश्चित होती हैं।	जाति के आधार पर 'लघु' का मान बदलने से मात्राएँ बदल जाती हैं।
खाली (O) का स्वरूप	शून्य (O) का अर्थ 'खाली' (बिना आघात का समय) होता है।	शून्य (O) का अर्थ 'द्रुत अंग' है, जिसमें थाप और विसर्जन दोनों होते हैं।
मूल तालों की संख्या	अनेक स्वतंत्र तालें प्रचलित हैं।	मूल 7 ताल हैं, जो जातियों के भेद से 35 ताल बनते हैं।
पहचान का आधार	ताल की पहचान उसके 'ठेका' के बोलों (शब्दों) से होती है।	ताल की पहचान उसके गणितीय 'अक्षरकाल' और अंगों के स्वरूप से होती है।

अध्याय 7: जीवन परिचय (प्रमुख संगीतज्ञ)

1. पं. किशन महाराज (बनारस घराना - तबला)

- **जन्म एवं परिवार:** 3 सितंबर 1923 को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन बनारस के एक प्रतिष्ठित संगीत परिवार में हुआ।
- **गुरु/शिक्षा:** प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता 'लय भास्कर' पं. हरि महाराज से ली। पिता के अल्पायु में निधन के बाद अपने बड़े पिता 'वाद्य शिरोमणि' पं. कंठे महाराज से शिक्षा पूर्ण की।
- **वादन शैली:** शुद्ध बनारस बाज़ का वादन करते थे। विषम प्रकृति की तालों (जैसे 9, 11, 13 मात्राओं) और कठिन लयकारियों के वादन में इनकी विशेष रुचि थी। उनके द्वारा बजाई जाने वाली उठान और पड़ाल बनारस बाज़ की मुख्य पहचान बनी।
- **फिल्मी योगदान:** सत्यजीत रे की फिल्म 'नीचा नगर' (संगीत: पं. रविशंकर), चेतन आनंद की 'आँधियाँ' (संगीत: उस्ताद अली अकबर खाँ) और 'पहली नज़र' जैसी फिल्मों में तबला वादन किया। फिल्म 'बड़ी माँ' में सितारा देवी के नृत्य के साथ पखावज वादन भी किया था।
- **संगत:** इन्होंने तीन पीढ़ियों के महान गायकों, वादकों (उस्ताद फैयाज खाँ, पं. ओंकारनाथ ठाकुर, उस्ताद अली अकबर खाँ, पं. रविशंकर) और नर्तकों के साथ सफल संगत की।
- **पुरस्कार एवं सम्मान:** पद्म विभूषण (2002) के अलंकरण से सम्मानित होने वाले यह प्रथम तबला वादक थे। इसके अलावा इन्हें केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1984) और पद्म भूषण (1973) भी प्राप्त हुआ।
- **निधन:** 4 मई 2008 को बनारस में हुआ।

2. उस्ताद अल्ला रक्खा खाँ (पंजाब घराना - तबला)

- **जन्म एवं नाम:** 29 अप्रैल 1919 को जम्मू के समीप 'रतनपुर' (रत्नगढ़) गाँव में हुआ। इनका वास्तविक नाम 'अल्लाह रक्खा कुरैशी' था।
- **गुरु/शिक्षा:** आठ वर्ष की आयु में गुरु लाल मोहम्मद से संगीत की प्रारंभिक शिक्षा ली। बाद में पंजाब घराने के विख्यात उस्ताद कादिर बख्श के शिष्य बने। गायन की शिक्षा इन्होंने पटियाला घराने के उस्ताद आशिक अली खाँ से प्राप्त की।
- **करियर व आकाशवाणी:** इन्होंने लाहौर तथा दिल्ली आकाशवाणी (All India Radio) में स्टाफ आर्टिस्ट के रूप में कार्य किया। बाद में मुंबई में स्वतंत्र संगीत निर्देशक के रूप में भी कार्य किया।
- **वैश्विक ख्याति:** सितार वादक पं. रविशंकर के साथ इनकी जुगलबंदी ने भारतीय संगीत और तबले को वैश्विक मंच (विदेशों) पर स्थापित किया।
- **उपाधि:** इन्हें 'अब्बा जी' के नाम से आदरपूर्वक पुकारा जाता था। इनके सुपुत्र उस्ताद जाकिर हुसैन वर्तमान में विश्वविख्यात तबला वादक हैं।
- **पुरस्कार एवं सम्मान:** संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1982) और पद्म श्री (1977) से सम्मानित किया गया।
- **निधन:** 3 फरवरी 2000 को मुंबई में हुआ।

3. उस्ताद अहमद जान थिरकवा (फर्रुखाबाद घराना - तबला)

- **जन्म एवं परिवार:** सन 1892 में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद के एक संगीतकार परिवार में हुआ।
- **गुरु/शिक्षा:** प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता उस्ताद हुसैन बख्श से ली। 12 वर्ष की आयु में फर्रुखाबाद घराने के विख्यात उस्ताद मुनीर खाँ के शिष्य बने और मुंबई आकर कड़ा रियाज़ किया।
- **'थिरकवा' नामकरण:** जब ये बजाते थे, तो इनकी अँगुलियाँ चमड़े (पुड़ी) पर थिरकती हुई प्रतीत होती थीं। इसे देखकर इनके गुरु उस्ताद मुनीर खाँ ने इन्हें 'थिरकवा' नाम दिया, जो बाद में इनकी पहचान बन गया।
- **वादन की विशेषता:** इन्हें 'तबले का माउंट एवरेस्ट' कहा जाता है। इन्होंने चार घरानों (फर्रुखाबाद, दिल्ली, अजराड़ा और लखनऊ) की बंदिशों को अपने वादन में आत्मसात किया था। इनका स्वतंत्र वादन (विशेषकर 'थाप' और 'निकास') अद्वितीय था।
- **कार्यक्षेत्र:** रामपुर रियासत के दरबारी वादक रहे और बाद में भातखंडे संगीत संस्थान (लखनऊ) में तबला विभागाध्यक्ष के रूप में लंबे समय तक शिक्षण कार्य किया।
- **पुरस्कार एवं सम्मान:** संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1954) और पद्म भूषण (1970) से सम्मानित किया गया।
- **निधन:** 5 मार्च 1976 को लखनऊ में हुआ।

4. पंडित कंठे महाराज (बनारस घराना - तबला)

- **जन्म:** सन 1880 में बनारस के कबीरचौरा मोहल्ले में संगीतज्ञों के परिवार में हुआ।
- **गुरु/शिक्षा:** तबले की प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता पं. जगन्नाथ महाराज से प्राप्त की। बाद में बनारस घराने के प्रख्यात उस्ताद पं. बलदेव सहाय जी के शिष्य बने।

- **वादन की विशेषता:** इनके वादन में बनारस बाज़ के खुले और बुलंद बोलों की प्रधानता थी। वे प्रस्तार, कायदा और लड़ी के वादन में अत्यंत निपुण थे।
- **उपाधि:** संगीत में उनके अद्वितीय योगदान के कारण उन्हें संगीत जगत में 'वाद्य शिरोमणि' की मानद उपाधि से विभूषित किया गया था।
- **शिष्य परंपरा:** इनके शिष्यों में इनके भतीजे और दत्तक पुत्र पं. किशन महाराज सबसे प्रमुख थे, जिन्हें इन्होंने कड़े अनुशासन में संगीत सिखाया।
- **निधन:** 1 अगस्त 1969 को बनारस में हुआ।

5. राजा छत्रपति सिंह (कुदऊ सिंह घराना - पखावज)

- **जन्म एवं राजघराना:** 15 अक्टूबर 1919 को उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले की 'बिझौटी रियासत' के राजपरिवार में हुआ। राजा होने के बावजूद इन्होंने संगीत को साधना के रूप में चुना।
- **गुरु/शिक्षा:** पखावज की प्रारंभिक शिक्षा स्वामी रामदास जी से ली। बाद में कुदऊ सिंह घराने के महान पखावज वादक पंडित सखाराम जी के विधिवत शिष्य बने।
- **वादन शैली:** इनका वादन अत्यंत ओजस्वी, बुलंद, स्पष्ट और वीर रस प्रधान था। इन्होंने ध्रुपद गायन के साथ संगत और स्वतंत्र वादन दोनों में नए कीर्तिमान स्थापित किए।
- **शिक्षण एवं पद:** ये मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध 'चक्रधर नृत्य केंद्र' (रायगढ़) और 'उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी' (भोपाल) में पखावज के मुख्य गुरु और परामर्शदाता रहे।
- **पुरस्कार एवं सम्मान:** केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1987) और मध्य प्रदेश सरकार का प्रतिष्ठित 'तानसेन सम्मान' प्राप्त हुआ।
- **निधन:** 26 जनवरी 1998 को हुआ।

6. पंडित पागलदास जी महाराज (नाना पानसे घराना - पखावज)

- **जन्म एवं नाम:** सन 1878 के आस-पास अयोध्या (उत्तर प्रदेश) में हुआ। इनका वास्तविक नाम **'पं. रामशरण दास'** था।
- **'पागलदास' / 'पागलगुरु' नामकरण:** वे स्वभाव से अत्यंत सीधे, सरल, फकीर और मस्तमौला स्वभाव के थे। संगीत के प्रति उनकी अत्यधिक दीवानगी और धुन के कारण लोग उन्हें आदर व प्रेम से 'पागलदास' या 'पागलगुरु महाराज' कहने लगे।
- **गुरु/शिक्षा:** पखावज की शिक्षा नाना पानसे घराने के सुप्रसिद्ध विद्वान बाबूजी मृदंगाचार्य से प्राप्त की थी।
- **वादन की विशेषता:** नाना पानसे शैली के बंद और सुरीले बोलों पर इनका अद्भुत नियंत्रण था। इनके वादन में गमक और तैयारी का बेजोड़ तालमेल था। ये घंटों तक एक ही लय में बिना थके वादन करने के लिए विख्यात थे।
- **शिष्य परंपरा:** इनके शिष्यों में पं. अयोध्या प्रसाद और स्वामी रामदास जैसे प्रसिद्ध पखावज वादक शामिल थे।
- **निधन:** सन 1946 में अयोध्या में हुआ।

@anshurajhat